त्यागकर सेवक की भाँति उनकी परिचर्या में रात-दिन निष्ठ रहे। आत्मज्ञानी सद्गुरु का संतोष ही भगवत्प्राप्ति के पथ में द्रुत प्रगति करने की गुप्त कुञ्जी है। जिज्ञासा तथा आज्ञानुगमन, ये दोनों ज्ञानप्राप्ति के लिए उपयुक्त साधन हैं। आज्ञापालन एवं सेवाभाव के अभाव में विद्वान् सद्गुरु से की गयी तत्त्वजिज्ञासा प्रभावोत्पादक नहीं होगी। शिष्य के लिए गुरु की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है। जब गुरु देखते हैं कि शिष्य में यथार्थ पारमार्थिक जिज्ञासा का उदय हो गया है, तो कृपापूर्वक उसके हृदय-प्रांगण में यथार्थ ज्ञान का संचार कर देते हैं। इस श्लोक में अन्धानुकरण एवं अनर्गल जिज्ञासा, इन दोनो की निन्दा है। गुरुदेव के शरणागत होकर उनसे श्रवण ही नहीं करे, वरन् आज्ञानुगमन, सेवा और जिज्ञासा के द्वारा उनसे विशद ज्ञान भी प्राप्त करे। यथार्थ सद्गुरु स्निग्ध शिष्य पर स्वभावतः अतिशय कृपा का परिवर्षण किया करते हैं। अतएव जब शिष्य विनीत आज्ञानुवर्ती सेवा में निरन्तर तत्पर रहता है, तो ज्ञान और जिज्ञासा का विनिमय (आदान-प्रदान) पूर्ण हो जाता है।

8/4

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।।३५।।

यत् =जिसे; **ज्ञात्वा** =जानकर; **न** =कभी नहीं; **पुनः** =फिर; **मोहम्** =मोह को; **एवम्** =इस प्रकार; **यास्यसि** =प्राप्त होगा; **पाण्डव** =हे पाण्डुपुत्र; **येन** =जिससे; **भूतानि** =जीवों को; **अशेषेण** =सम्पूर्ण; **द्रक्ष्यसि** =तू देखेगा; **आत्मनि** =परमात्मा में; **अथो** = अर्थात्; **मयि** =मुझ में।

अनुवाद

हे अर्जुन ! उस ज्ञान के हो जाने पर तू फिर इस प्रकार मोह को कभी प्राप्त नहीं होगा; साथ ही यह जान जायगा कि सब जीव मेरे भिन्न-अंश हैं और मुझ में ही स्थित हैं।।३५।।

तात्पर्य

यथार्थ तत्त्वज्ञानी से ज्ञानप्राप्ति होने पर यह समझा जाता है कि सब जीव भगवान् श्रीकृष्ण के भिन्न-अंश हैं। श्रीकृष्ण से सम्बन्धहीन अस्तित्व की धारणा को 'माया' कहते हैं (मा=नहीं, या=यह)। कतिपय मनुष्यों की धारणा में, 'श्रीकृष्ण से हमें कोई प्रयोजन नहीं, श्रीकृष्ण ऐतिहासिक महापुरुष मात्र हैं; परतत्त्व तो निर्विशेष ब्रह्म ही है।' भगवद्गीता के मत में यह निर्विशेष ब्रह्म यथार्थतः भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह का प्रकाशमात्र है। भगवान् श्रीकृष्ण सब के कारण हैं। ब्रह्मसंहिता में श्रीकृष्ण को स्पष्ट रूप में स्वयं भगवान् और समस्त कारणों का परम कारण कहा गया है। सब प्रकार के कोटि-कोटि अवतार उनके अंश-कला मात्र हैं। इसी भाँति, जीवात्मा भी श्रीकृष्ण के अंश हैं। मायावादियों की यह धारणा मिथ्या है कि विविध अंशों में प्रकट हुए श्रीकृष्ण का निजी स्वरूप समाप्त हो जाता है। यह विचार सर्वथा प्राकृत है। प्राकृत-जगत् में हमारा अनुभव है कि जब किसी वस्तु का विखण्डन किया जाय तो